ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.20, No.3, July-Sept., 2025/17

तन्त्र–साधना अगस्त्य के शक्तिसूत्र के अनुसार में 'शक्तितत्त्व'

मीनाक्षी जोशी 'शाङ्करी'

https://doi.org/ 10.61410/had.v20i3.246

This research paper has been written as a part of Research Project of ICSSR entitled: भारतीय ज्ञान परम्परा में काश्मीरी शैव ;सृष्टिविज्ञान और लोक परम्परा के विशेष सन्दर्भ मेंद्ध।

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षे न च तत्र भोगः।

श्रीसुन्दरीसेवनतत्परानां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।

–मङ्गलराजस्तव, रुद्रयामलतन्त्र

मुख्य पारिभाषिक शब्द –स्वातन्त्र्य शक्ति, कुण्डलिनी, अचिन्त्यमाया–शक्ति, माया, कौल मार्ग, मिश्र मार्ग, समय मार्ग, कुल, अकुल, षट्चक्र और श्री चक्र।

शोध सारांश

भारतीय संस्कृति और साधना के गूढ़तम तत्त्वों का अनुसन्धान करने वाले महातन्त्रयोगियों की दृढ़ धारणा थी कि भारतीय साधना विश्व की प्राचीनतम संस्कृति या विश्व मानव की साधना है। तन्त्रयोगियों ने गुह्यतम एवं लुप्त प्रायः तन्त्रज्ञान को हमारे समक्ष हस्तामलकवत् रखा है। यतोहि तन्त्र–उपासना प्रधान शास्त्र है और आदि शिव तथा आदि पार्वती उपास्य देवता है। तन्त्रयोगियों के पास अनुभवसिद्ध ज्ञान का अक्षय भण्डार था जिसे उन्होंने अपने समग्र जीवन में स्वाध्याय एवं साधना द्वारा अभिसिञ्चित किया था। तन्त्र–साधना से सम्बन्धित साहित्य पर विहङ्गालोकन किया जाए तब वह एक महार्णव की भांति ही दृष्टिगोचर होता है। अत एव प्रस्तुत शोध–पत्र तन्त्र –साधना में अगस्त्य के शक्तिसूत्र के अनुसार 'शक्तितत्त्व' श्रीसाधना के सन्दर्भ में प्रस्तुत विचारों को आगम परम्परा के मूल ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। वैदिक विद्या में श्रीविद्या सर्वोच्च विद्या है इसी का अपररूप गायत्री मन्त्र में स्फुरित हुआ है। देव्युपनिषद् एवम् अथर्ववेद सौभाग्य खण्ड में इस विद्या को रहस्यात्मक आवरण या प्रतीक शब्दावली में कहा गया है–

कामो योनिरू कामकला वज्रपाणिर्गुहा हंसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।

पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमाता दिविद्योम्॥

–देव्युपनिषद् श्लोक–14

जहां एक और महर्षि बादरायण की जिज्ञासा का केन्द्र "ब्रह्म" था तो दूसरी ओर ऋषि जैमिनि की जिज्ञासा का केन्द्र ब्रह्म ना होकर "धर्म" था। एक के ध्यान एवं उपासना का विषय निर्गुण निराकार परात्पर सत्ता थी तो दूसरे के ध्यान एवं उपासना का विषय वेद, वैदिक देवता एवं यज्ञ थे। वेदान्त दर्शन निर्गुण परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करके उसके स्वरूप की मीमांसा करता है तो जैमिनी का मीमांसा दर्शन परमात्मा की सत्ता को अस्वीकार करते हुए स्वर्ग एवम् अन्य पुरुषार्थों की प्राप्ति के साधन भूत याज्ञीय– कर्मों का विधान करता है। एक ही दृष्टि में विश्व के सृजन पालन और समाज के लिए

- **सहायक आचार्य,संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं प्राच्य भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज**

परम सत्ता में विश्वास सर्वथा आवश्यक था तो दूसरे के विचार से सृष्टि आदि व्यापारों के निष्पादन के लिए उनकी आवश्यकता न थी, अपितु यह जगत् सत्य है। इन दोनों ही दर्शकों की जिज्ञासा में किसी भी परात्परा, निरपेक्ष, सार्वभौम, नित्या एवं सर्वाधिकारण पराशक्ति के चिन्तन की जिज्ञासा दिखाई नहीं देती। परिणामस्वरूप तान्त्रिकों ने वही कार्य किया जो ब्रह्मजिज्ञासा एवं धर्मजिज्ञासा के द्वारा न किया जा सकता था इसलिए उन्होंने अपनी जिज्ञासा का केन्द्र परात्परा, स्वातन्त्र्य शक्ति– समन्विता, अद्वितीया, सर्वाधिकारणभूता, अजा, एका, ब्रह्मस्वरूपा एवं अवाङ्मनसगोचरा, अद्वैत महाशक्ति का अनुसन्धान किया जिसके परिणामस्वरूप अथातो शक्ति जिज्ञासा का आविर्भाव हुआ।

ऋग्वेद में एक ओर जहां वाक्सूक्त की ऋषिका वागम्भृणी सर्वदेव–व्यापकत्व सर्वरूपिणी शक्ति की उपस्थापना करते हुए कहती है–

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ 1॥
अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥

वाक्–सूक्त ऋ. 10/125 १२५/1, 3

वहीं दूसरी ओर सृष्टि की रचयिता के रूप में उपनिषद् भी उद्घोषणा करते हैं–

अजाम् एकां लोहितशुक्लकृष्णां
सरूपाः बह्विः प्रजाः सृजमानाम्।
जुषमाणः एकः अजः अनुशेते।

अन्यः अजः एनां भुक्तभोगां जहाति॥

–श्वेताश्वतरोपनिषद्

त्रिपुरोपनिषद् की उस "एका सा आसीत् प्रथमा सा", त्रिपुरातापिन्युपनिषद् की "सैवेयं भगवती त्रिपुरेति" इत्यादि कुण्डलिनी ज्ञान शक्ति एवं इच्छाशक्ति महत्वपूर्ण सुन्दरी देवी एवम् उनकी स्वात्माभूता श्री विद्या एवं श्रीचक्र के स्वरूप की विवेचना ही दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय बना।

समस्त दार्शनिक चिन्तन में विश्व की आधारभूत परासत्ता का स्वरूप पुरुषों का रूप ही स्वीकार किया गया चाहे उसे ब्रह्म कहा गया कहीं परमेश्वर कहीं भगवान् कहीं पर महाशिव तो कहीं महाविष्णु के रूप में स्तुति की गई। प्रत्येक पुरुषाकार सत्ता के साथ उसकी शक्ति की भी कल्पना की गई और वह कल्पित शक्ति उससे अभिन्न शक्ति के रूप में तो कहीं अचिन्त्यमाया–शक्ति के रूप में कहीं सत् रूप में कहीं असत् रूप में कल्पित की गई है। भले ही 'माया' वेदान्त की सशक्त अवधारणा के रूप में स्थापित हुई परन्तु कहीं पर भी इसका पृथक्तया विवेचन नहीं हुआ। यद्यपि वेदों में सरस्वती, उषा, अदिति, वाणी, रात्रि, गायत्री, सावित्री, राका, सिनीवाली, दुर्गा, त्रिपुरा, सुभागा, सुन्दरी, अम्बिका, ललिता, श्रीविद्या आदि देवियों की परा शक्ति के रूप में कल्पना सुस्पष्ट दिखाई देती है। श्री देव्यथर्वशीर्ष, अथर्ववेद में समस्त देवताओं के द्वारा देवी से अपना परिचय देने का उल्लेख हुआ **'कासि त्वं महादेवी'** तब देवी कहती है– **अहं ब्रह्मस्वरुपिणी, मत्तः प्रकृति–पुरुषात्मकं जगत्, शून्यञ्चाशून्यञ्च,**

अहमानन्दानानन्दौ, अहं विज्ञानाविज्ञाने, अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये, अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि, अहमखिलं जगत्, वेदोऽहमवेदोऽहम्, विद्याहमविद्याहम्, अजाहमनजाहम्, अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम्॥

–श्री देव्यथर्वशीर्ष, 1–4

और वही अनुभूति जो सर्वप्रथम एक ब्रह्मवादिनी को वेदों में सर्वत्र अनुगूञ्ज करती हुई वही वाक्सूक्त की घोषणा के रूप में सुनाई पड़ती है।

इस प्रकार शक्ति को परात्परब्रह्म के रूप में स्थान तो मिल गया किन्तु शक्तिवाद की सुदृढ़ स्थापना के लिए ग्रन्थों का भी प्रणयन भी किया गया। त्रिपुरोपनिषद्, त्रिपुरतापिन्युपनिषद्, देव्युपनिषद्, भावनोपनिषद्, अगस्त्य के शक्तिसूत्र, हयग्रीव के शाक्तदर्शन, दत्तात्रेय की दत्तसंहिता, परशुराम के परशुराम–कल्पसूत्र, त्रिपुरारहस्य और आचार्य शङ्कर की सौन्दर्यलहरी इत्यादि ग्रन्थ शक्ति के गौरव गान में लिखे गए।

इस प्रकार 'अथातो शक्तिजिज्ञासा' का यह प्रथम सूत्र पहली बार हयग्रीव के शाक्तदर्शन और अगस्त्य के शक्तिसूत्र में ही स्थान प्राप्त कर सका।

श्रीविद्या का स्वरूप एवं मूल–सिद्धान्त

अगस्त्य के शक्तिसूत्र के अनुसार श्रीविद्या वेदों की प्राचीनतम एवं गुह्यतम रहस्य विद्याओं में से अन्यतम विद्या है। यह सिद्धियों का अगाध भण्डार एवं मोक्ष का अन्यतम साधन है ।

षोडशीकलाशकार–रेफ–ईकार–बिन्द्वन्तो मन्त्रः।

एतस्यैव बीजस्य नाम श्रीविद्येति। श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्।

दश महाविद्याओं में से एक महाविद्या षोडशी या श्रीविद्या भी मानी जाती है इसकी त्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी, ललिता, कामेश्वरी, त्रिपुरा, महात्रिपुरसुन्दरी आदि अनेक नामों से पूजा की जाती है। आदि शङ्कराचार्य, भास्कराचार्य आदि इसके परम उपासक रहे हैं परन्तु जब पौराणिक परम्परा की ओर हम दृष्टि करते हैं तब इसके हमें द्वादश सम्प्रदाय और द्वादश उपासक प्राप्त होते हैं। मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव, क्रोध भट्टारक (या दुर्वासा)। इन लोगों ने श्रीविद्या की साधना से अपने अधिकार के अनुसार पृथक् फल प्राप्त किया था।

श्रीविद्या के मुख्य 12 सम्प्रदायों में से बहुत से सम्प्रदाय लुप्त हो गए है, केवल मन्मथ और कुछ अंश में लोपामुद्रा का सम्प्रदाय अभी जीवित है। कामराज विद्या (कादी) और पञ्चदश वर्णात्मक तन्त्र राज, और त्रिपुरोपनिषद् के समान लोपामुद्रा – विद्या आदि भी पञ्चदश वर्णात्मक प्रचलित हैं। इनका यन्त्र श्रीयन्त्र कहलाता है 10 या 18 महाविद्याओं के दो कुल है उनमें से एक 'काली कुल' और दूसरा 'श्रीकुल' कहलाता है श्रीविद्या श्रीकुल से सम्बन्धित विद्या है। अगस्त्य के शक्तिसूत्र शाक्त–तन्त्रसाहित्य के लिये प्रवेशद्वार के समान है जो उन्होनें लोपामुद्रा से शाक्तदीक्षा के उपरान्त लिखे।

तन्त्र साधना में मोक्ष हेतु दशमहाविद्या मानी जाती हैं। विष्णुपुराण के अनुसार विद्या वही है जो मुक्ति प्रदान करें। इसीलिए दशमहाविद्याओं की उपासना अलग–अलग रूपों में शाक्त तन्त्र में की जाती है। अधिकारी भेद तथा साधना पद्धति भेद से प्रत्येक महाविद्या अपने साधकों को तत्तद् फल की प्राप्ति भी करवाती है जिनका विनियोग उनके द्वारा किया जाता है।

इन महाविद्याओं में जो षोडशी महाविद्या है उसी को श्रीविद्या भी कहा जाता है।

पौराणिक परम्परा की दृष्टि से श्री विद्या के द्वादश सम्प्रदाय और द्वादश उपासक हैं इनका यन्त्र श्रीयन्त्र कहलाता है । दशमहाविद्याओं के दो कुल हैं। उनमें से एक काली कुल और दूसरा श्रीकुल। श्री विद्या संकुल से सम्बन्धित है । इस श्री यन्त्र की मुख्यतः 3 सम्प्रदाय है – हयग्रीव सम्प्रदाय , आनन्द भैरव सम्प्रदाय और दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय श्री यन्त्र के अन्तर्गत में जो बिन्दु होता है वही भगवती त्रिपुर सुन्दरी का स्वरूप आसन एवं धाम होता है।

यहां ब्रह्माण्ड , प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड तथा शक्त्यण्ड का उद्भव केन्द्र है। भगवती का श्री यन्त्र समस्त सृष्टि का रेखात्मक चित्र तो है ही साथ ही यह अनन्त देवी–देवताओं शक्तियों तथा समस्त रचना रचनास्तरों, लोकों एवं आध्यात्मिक सूक्ष्म मण्डलों का भी निवास स्थान है। देवी एवं उनके यन्त्र की आराधना यद्यपि पशु, वीर एवं दिव्य तीनों भागों से की जा सकती है परन्तु दिव्य भाग को सर्वोत्तम माना गया है। शाक्तों के तीन सम्प्रदाय प्रमुख हैं कौल मार्ग, मिश्र मार्ग और समय मार्ग । आदि शङ्कराचार्य समयमार्गी थे। समय मार्गी शाक्त वेदों पुराणों सदाचारों विधि निषिद्धों में आस्था रखते हैं, परन्तु कौल इन्हें नहीं मानते। समयाचार्य श्रीविद्या की आन्तर पूजा का प्रतिपादक है। परमेश्वर के साथ शक्ति का या समय के साथ समया का सामरस्य करवाना ही समयाचारों का परम लक्ष्य है। श्री सम्प्रदाय अद्वैतवाद में विश्वास रखता है अतः **'अहं देवी न चान्योऽस्मि'** की अनुभूति ही उनका काम्य है।

श्री विद्या के साधना पद्धति में भक्ति ज्ञान एवं योग तीनों ही स्वीकृत है षट्चक्र वेधन के द्वारा मूलाधारस्थ कुलशक्ति को जागृत करके उसके वियुक्त प्रियतम अकुल से उसका सम्मेलन कराना भी एक साधना पथ है तथा ज्ञानोत्तरा भक्ति के द्वारा अर्थात् ज्ञान और भक्ति का सामञ्जस्य करके विश्वात्मा भगवती ललिता का अपनी आत्मा के रूप में साक्षात्कार करना भी एक साधना पथ है। यह

दोनों पथ श्रीविद्या में स्वीकृत है। श्री विद्या की साधना में अन्तर्याग से उत्कृष्टतर बहिर्याग का ही आत्मीकरण माना जाता है। भगवती महात्रिपुरासुन्दरी समस्त प्राणियों की आत्मा है। वे विश्वमय है और विश्वातीत भी। यथार्थतः वह कामेश्वर भी है और कामेश्वरी भी।

भावनोपनिषद् के शब्दों में कहा जाए तो यहां वही शक्ति जिज्ञासास्य हैं जिसकी उपासना में 'इच्छा–ज्ञान–क्रियात्मक ब्रह्मग्रन्थिमत् रसतन्तु ब्रह्मनाडीश' ब्रह्मसूत्र हैं, 'चिदग्निस्वरूपपरमानन्द शक्तिस्फुरण' ही वस्त्र है, 'चिच्चन्द्रमयी सर्वांगस्रवण' ही स्नान है, 'रक्तशुक्लपदैकीकरण' ही पाद्य है, 'स्वच्छस्वपरिपूर्णानुस्मरण' ही गन्ध है, 'सच्चिदुल्काऽकाशदेहो' दीप है और 'मूलाधारादाब्रह्मपर्यन्तं ब्रह्मरन्ध्रादामूलाधारपर्यन्तं गतागतरूप' प्रादक्षिण्य है। यह साधना का वह उच्चतम स्तर है जहां निरोध, उत्पत्ति–बन्धन–साधना–मुमुक्षा–मुक्तिपथ–साधक–मुमुक्षु एवं मुक्त की अवधारणा मिथ्या हो जाती है–

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
ना मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ।।

जहां ज्ञान–विज्ञान तत्पर योगी धन्यार्थी की भांति समस्त बाह्याडम्बरों को पलाल की भांति त्याग देता है–

पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद् ग्रन्थमशेषतः।

जहां अन्तर पूजा ही यथार्थ पूजा है ।

अतः समयिनामैहिकामुष्मिकफलसाधनोपायः आन्तरपूजेति समयमततत्त्वम्। –लक्ष्मीधरा

जहां मन्त्रों का पुनश्चरण ,जप बाह्य होम बाह्य पूजा के लिए कोई स्थान नहीं है हृत्कमल एवं सहस्रार में ही पूजा यथार्थ पूजा है।

जहां बाह्य पूजा निषेध है सनत्कुमार संहिता में भी कहा गया ह–

बाह्यापूजा न कर्तव्याकर्तव्या बाह्यजातिभिः।

जहां मन्त्र जप जपाङ्ग, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, दृष्टा दृश्य दर्शन, ध्याता, ध्यान, ध्येय ,उपासक, उपासना, उपास्य, साधक, साधना, साध्य, देवता , ऋषि, छन्द, वर्ण, नाद, शून्य,अवस्था, मन्त्रार्थ, जगत्, ग्रह, नक्षत्र, चक्र, राशि, शक्तिचक्र, गुरु एवं भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के मध्य स्थित सारे दायित्व ध्वस्त होकर पूर्ण सामरस्य की अनुभूति होती है। जहां शिव और शक्ति, भक्त और भगवान्, कुल और अकुल, षट्चक्र एवं श्री चक्र, श्री चक्र एवं शरीर, शिव चक्र एवं शक्ति चक्र, मूलाधार एवं सहस्रार, कुण्डलिनी एवं महा कुण्डलिनी आदि सभी अपनी–अपनी भेदात्मकता का त्याग कर अद्वैतभावापन्न होकर एक हो जाते हैं। जहां कर्म ज्ञान भक्ति उपासना एवं योग अपने–अपने भेदभाव का त्याग करके अपूर्व सङ्गम में रूपान्तरित होकर एक हो जाते हैं। इस प्रकार श्रीविद्या ब्राह्मीभाव ब्रह्माद्वैत एवं आत्मशक्ति की साधना की सन्देशवाहिका है। जहां पहुंचकर ज्ञान एवं योग एक हो जाते हैं तथा यहां ज्ञान एवं योग का प्राधान्य होते हुए भी भक्ति की मन्दाकिनी ही सर्वाधिक पूज्या है–

न योगो न तपो नार्चाक्रमः कोऽपि प्रणीयते।
अमाये शिवमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेका प्रशस्यते॥

–शिवस्तोत्रावली ,उत्पल देव

यहां पहुंचकर ज्ञानमार्गी केवलाद्वैतवेदान्ती आचार्य शङ्कर भी अपनी ब्रह्मरूपता और उसकी अस्मिता भूलकर कहते हैं कि–

सत्यपि भेदापगमे नाथ! तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रः न तारङ्गः॥

यहां जगत् ब्रह्म एवं जीव से भिन्न 'विवर्त' नहीं प्रत्युत यहां यह पराशक्तिस्वरूप है ब्रह्म से अभिन्न है और 'परिणाम' है।

श्री विद्या सम्प्रदाय का वर्ण विज्ञान तथा उसका रहस्य

वर्ण का शक्तित्व और शिवत्व

शाक्त उपासना शत–प्रतिशत शक्ति की उपासना है। शाक्तों ने मन्त्र को भगवती त्रिपुरसुन्दरी का सूक्ष्म स्वरूप कहा है और मन्त्रों के तथा वर्णमाला के समस्त वर्णों एवं मातृकाओं को शक्ति का अवतार माना है। यह शक्ति की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति या शक्ति का नादात्मक रूप अथवा भगवती का सूक्ष्म शरीर माना जाता है। शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक मातृका एवं वर्ण की अपनी–अपनी विशिष्ट शक्ति भी है। वर्णों की यह सभी व्यष्टि शक्तियां पराशक्ति से मिलकर महात्रिपुरसुन्दरी स्वरूप हो जाती है। वर्णमाला का प्रथम अक्षर 'अ' है और अंतिम अक्षर 'ह' है। शिव 'अ' है और 'ह' शक्ति है । अतः सभी वर्ण शिव एवं शक्ति है। इसलिए कहा भी गया है कि–

सर्वे वर्णात्मकारू मन्त्राः ते शक्त्यात्मका प्रिये।

नाद चित् शक्ति का स्वरुप है और प्रत्येक वर्ण के मूल में चेतन नादतत्व मणिमाला में सूत्रवत् पिरोया हुआ है। शब्द या वर्ण को ब्रह्म कहा गया है–

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।

शब्द ही रूपान्तरित होकर पदार्थ बन जाता है वाक्यपदीय में कहा भी गया है–

विवर्तोऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥ (वाक्यपदीय 01.01)

इस प्रकार शब्द का परिणाम ही जगत् है। यही 36 तत्व है एवं इसका विस्तार ही समस्त सृष्टि है। जब सारी सत्ताएं शब्द के ही रूपान्तर है और शब्द शक्ति के रूपान्तर है। अतः सब कुछ शक्ति ही है । भगवती त्रिपुरसुन्दरी स्वयमेव शब्द प्रमाण है।

शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुन्दरी।

समस्त मन्त्र वर्णात्मक और शक्त्यात्मक है। शक्ति ही मातृका अर्थात् वर्ण है और वही शिवात्मिका भी है।

सर्वे वर्णनात्मका मन्त्रा ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका॥

वर्ण या मातृकाएं परम तेज से समन्वित है और उन्होंने आब्रह्म भुवनपर्यन्त सभी को व्याप्त कर रखा है । वाक् एवं उसके अर्थ दोनों ही शिव शक्ति में है । श्री विद्या अर्थात् मन्त्र एवं देवता अर्थात् भगवती त्रिपुरसुन्दरी में रञ्चमात्र भी भेद नहीं है।

मन्त्र में वाच्य एवं वाचक दो शक्तियां रहती है। वाच्य शक्ति मन्त्र की आत्मा है । वह ज्योतिर्मयी है। शब्द ब्रह्म ही परावाक् है और परावाक् तथा शब्दब्रह्म दोनों ही शक्ति के रूप हैं । शक्ति सब का उपादान कारण है। मन्त्रों की जीवभूता शक्ति विमर्शशक्ति है जो परम शिव से अभिन्न है–

मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया।
तया हीना वरारोहे निष्फला शरदभ्रवत॥

–शिवसूत्रविमर्शिनी

वर्णनात्मक मन्त्र, मन्त्र नहीं अपितु वर्णों में निहित शक्ति ही मन्त्र है। उसमें निहित नाद का उल्लास यही मन्त्र है।

वर्णात्मको न मन्त्रो नादोल्लासो भवेन्मन्त्रः।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का रूप जो शब्द का चरम रूप है उसे परावाक् कहा जाता है। ईक्षणात्मक मातृका पश्यन्ती वाक् है। मातृका का हृदयस्थ सूक्ष्म स्वरूप मध्यमा वाक् है। और नववर्गवती स्थूल मातृका भगवती त्रिपुरसुन्दरी का स्थूल मातृका का शरीर है।

कुण्डलिनी शक्ति –कुण्डलिनी शक्ति वर्णशरीरात्मिका है। वर्ण और नाद ही उसका शरीर है भगवती महात्रिपुरसुन्दरी कुण्डलिनी ही है।

पराकुण्डलिनी–नाद से ही सम्पूर्ण विश्व का सृजन होता है। नाद ही प्राण एवं जीवनी शक्ति है। यही अनन्त विश्व को गर्भ में धारण कर प्रसुप्त सर्पाकार में रहता है। जब वह विश्व को गर्भ में धारण करके स्थित रहता है तब इसे परा कुण्डलिनी कहते हैं।

वर्ण कुण्डलिनी–जब परा कुण्डलिनी का नादात्मक रूप में स्फुरण होता है तब इसे वर्ण कुण्डलिनी कहते हैं।

प्राण कुण्डलिनी–जब यह नाद रूप भी गम्भीर सुषुप्ति में लीन हो जाता है तब इसे प्राण कुण्डलिनी कहते हैं। यह प्राण ही हंस है हकार विमर्शन रूप से त्याग करता है और सकार विमर्शन रूप से ग्रहण करता है। त्याग और ग्रहण ही इसका स्वभाव है। यही नादात्मक हंस का नित्योच्चारण है।

ऊर्ध्व कुण्डलिनी–ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्व में ऊर्ध्व कुण्डलिनी स्थित है। उसका स्वरूप प्रसुप्त भुजङ्गी के समान है और वही शक्ति भुवनों का आधार है। यह उर्ध्व कुण्डलिनी शक्ति अपने स्वरूपात्मक भित्ति पर समग्र विश्व का स्फुरण करती है । इसी कुण्डलिनी शक्ति से शक्ति तत्व का आरम्भ होता है। समग्र भुवनों एवं तत्वों की मुख्य आधाररूपा यही कुण्डलिनी शक्ति है।

शक्ति कुण्डलिनी–माया के ऊपर शक्ति का सञ्चार होता है। इसके नीचे शक्ति कुण्डलिनी का स्थान है। माया शक्ति ही नाद बिन्दु और अनन्त विश्व के आकार में स्फुरित होती है। शक्ति कुण्डलिनी के गर्भ में समग्र विश्व अवस्थित रहता है।

महामाया का दूसरा नाम ही कुण्डलिनी शक्ति है। पराशक्ति ही कुण्डलिनी है और उसके विविध विकासात्मक चरण या सोपान होते हैं।

अगस्त्य की दृष्टि में मोक्ष का स्वरूप (शक्तिसूत्र के आधार पर)

ऋषि अगस्त्य श्री विद्या के आचार्य की भांति दुःखध्वंस को परम पुरुषार्थ मानते हुए समस्त दुखों का उपशम ही मोक्ष के रूप में स्वीकार करते हैं। अगस्त्य कहते हैं–**सर्व दुखोपरमः श्रेयान् मोक्षः।**

(शक्तिसूत्र2.53)

प्रत्यगात्मावस्थान ही मुक्ति है–

अगस्त्य के अनुसार पहले प्रकृति को और फिर अपने को आत्म स्वरूप में लेकर के जब द्वैत भाव से अद्वैतभाव में अवस्थान होता है तब अकेला एक तत्व ही शेष रहता है। इसी अद्वैत अवस्था में साधक प्रत्येक आत्मस्वरूप की स्थिति में शुद्ध पूर्ण एवं मुक्त होकर अवस्थित रहता है।

प्रथमं प्रकृतिं मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मानं तस्यां मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते।

(योगसूत्र ३.५३)

मुक्तः शुद्धः पूर्णः प्रत्यगात्मैव भवति। (योगसूत्र3.54)

यह प्रत्यगात्मावस्थान ही मुक्ति है। '**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**' कह कर योगसूत्रकार पतञ्जलि ने भी आत्मावस्थान को ही मुक्ति माना है। इस प्रकार ब्रह्मीभाव ही मुक्ति है। अगस्त्य के अनुसार संसार सागर से मुक्ति पाने वाले मुक्त पुरुष का लक्षण यह है कि वह मुक्त एवं ब्रह्म हो जाता है।

शाक्त ज्ञानियों के लिए अपना मुक्तिस्वरूप परम गेहमात्र मणिद्वीप का चिन्तामणि गृह है। मणिद्वीप क्या है ? इस विषय में आचार्य हयग्रीव का कथन है कि कार्येश्वर तो ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र है और उनका लोक ब्रह्मलोक हैं किन्तु कारणेश्वर लोक तो मात्र मणिद्वीप ही है जो ब्रह्मलोक से भिन्न है।

आचार्य शङ्कर भी सौन्दर्यलहरी में भगवती त्रिपुरसुन्दरी को सुधा सिन्धु मध्य स्थित मणिद्वीप के चिन्तामणि गृह में शिवाकार मञ्च पर आसीन बताते हैं–

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥

– सौन्दर्यलहरी 8

जहां एक ओर अगस्त्य मुक्ति के विषय में कहते हैं कि वदित्वैवं तरति, य आत्मवत्। शक्तिसूत्र 2.1–2

वही हयग्रीव विद्या ब्रह्ममीमांसा एवं शाक्तमीमांसा का अपृथक सम्बन्ध बताती है–

ब्रह्ममीमांसा द्वैपायनेन तदन्तर्गतानि शाक्तदर्शनादीनि। (शाक्त दर्शनम् 18.2.26–27)

वे समाधि को मुक्ति का पर्याय मानते हैं क्योंकि हयग्रीव विद्या अद्वैतात्मक ब्रह्मविद्या है । परमात्मा में ऐक्य का अनुसन्धान की ही विद्या है और समाधि भी वही है ।

ऐक्यानुसन्धानं समाधिः। शाक्त दर्शनम्15.1.33

इयं हयग्रीवविद्या ब्रह्मैक्यदायिनी। शाक्त दर्शनम्18.14.24

अद्वैतं ब्रह्मविद्यामार्गमेव। शाक्त दर्शनम्17.3.16

और समाधि के लिए षट्चक्र उपासना अनिवार्य मानी गई है जो कि मन्त्राधारित है।

॥ इति शम्॥

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. श्री साधना, म०म०पं० गोपीनाथ कविराज विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 2010 पञ्चम संस्करण
2. तान्त्रिक साहित्य, म०म०पं० गोपीनाथ कविराज राजश्री पुरुषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन महात्मा गांधी मार्ग लखनऊ हिंदी समिति 1972
3. म.म.पं. गोपीनाथ कविराज और योग–तंत्र–साधना, रमेश चंद्र अवस्थी विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1996
4. तांत्रिक वाङ्मय में शाक्ति दृष्टि, महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज, प्रकाशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना,1994
5. महाभारत भाग–6, गङ्गाप्रसाद शास्त्री, प्रकाशक चतुरसेन गुप्त, महाभारत प्रकाशन मण्डल, चांदनी चौक, नई दिल्ली
6. त्रिपुरारहस्य, ज्ञानप्रभा टीका स्वामी श्री सनातनदेव जी महाराज, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1967
7. अद्वैत वेदान्त (इतिहास तथा सिद्धान्त)– डॉ राममूर्ति शर्मा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली द्वितीय संस्करण 1907
8. भारतीय दर्शन बलदेव उपाध्याय शारदा मन्दिर काशी सप्तम परिवर्धित संस्करण 1996
9. सौन्दर्यलहरी , श्री शङ्कराचार्य विरचित लक्ष्मीधरा सहिता , सम्पादक एन. एन. स्वामी घनपाठी द हिन्दुस्तान प्रेस मैसूर 1953
10. श्रीविद्या साधना (भाग 1–2), डा० श्यामाकान्त द्विवेदी "आनन्द", चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2005
11. शाक्तदर्शन, हयग्रीव, सम्पादक महामहोपाध्याय काशीनाथ वासुदेव अभ्यङ्कर, प्रकाशन महामहोपाध्याय काशीनाथ वासुदेव अभ्यङ्कर पब्लिकेशन सीरिज पूना, 1996
12. शक्तिसूत्र, महर्षि अगस्त्य, हिन्दी भाष्यकार–श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
13. दुर्गासप्तशती, गीताप्रेस, गोरखपुर